संवाद दर्शन

सहयोग राशि-5/-

विक्रम संवत : 2083 | वर्ष : 2026

हिन्दी पाक्षिक

अंक : अक्टूबर (प्रथम)



आइए, मिलकर मनाएं

मां दुर्गा का पर्व

सिनेमा में हनुमान अंश:
आस्था, साहस और नई पीढ़ी की कहानी

भारतीय संस्कृति में भगवान हनुमान केवल एक आराध्य देव नहीं, बल्कि शक्ति, साहस, भक्ति, समर्पण और निष्ठा के प्रतीक हैं। सदियों से लोककथाओं, रामलीला, साहित्य और कला के माध्यम से हनुमान चरित्र लोगों के मन में अपनी विशेष जगह बनाए हुए है। बदलते समय के साथ यही आस्था अब सिनेमा के पर्दे पर भी नए रूप और नई भाषा में दिखाई देने लगी है। फिल्मों में हनुमान से जुड़े प्रसंगों और पात्रों का इस्तेमाल केवल धार्मिक कथा कहने तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उन्हें आधुनिक जीवन के संघर्ष, आत्मविश्वास और नैतिक मूल्यों से जोड़ने की कोशिश भी हुई है।



हनुमान-आधारित फिल्मों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें पौराणिक कथा के साथ मानवीय भावनाओं का गहरा मेल देखने को मिलता है। बाल हनुमान की शरारतों से लेकर भगवान राम के प्रति उनकी अटूट भक्ति और लंका विजय में उनकी भूमिका तक, उनके जीवन के अनेक प्रसंग सिनेमा के लिए प्रभावशाली कथानक प्रदान करते हैं। विशेष रूप से बच्चों और युवाओं के बीच एनिमेशन फिल्मों ने हनुमान के चरित्र को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आधुनिक तकनीक, आकर्षक दृश्य और सरल संवादों के माध्यम से पौराणिक कथाएं नई पीढ़ी तक पहुंच रही हैं।

हनुमान के चरित्र की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि वे असाधारण शक्ति के बावजूद अहंकार से दूर दिखाई देते हैं। उनकी शक्ति का उद्देश्य व्यक्तिगत विजय नहीं, बल्कि धर्म और सेवा है। यही संदेश आज के दौर में भी प्रासंगिक लगता है। प्रतिस्पर्धा और तनाव से भरे जीवन में हनुमान का चरित्र व्यक्ति को यह याद दिलाता है कि वास्तविक शक्ति केवल सामर्थ्य में नहीं, बल्कि संयम, अनुशासन और सही उद्देश्य के लिए उस सामर्थ्य के उपयोग में है।

सिनेमा ने हनुमान को कभी वीर योद्धा, कभी बाल-नायक और कभी संकटमोचक के रूप में प्रस्तुत किया है। हालांकि पौराणिक चरित्रों को पर्दे पर उतारना आसान नहीं है। दर्शकों की धार्मिक भावनाओं का सम्मान करते हुए कथा में रचनात्मकता और आधुनिक तकनीक का संतुलन बनाए रखना फिल्मकारों के लिए बड़ी चुनौती होती है। किसी भी प्रस्तुति की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह मनोरंजन के साथ मूल चरित्र की गरिमा और सांस्कृतिक संवेदनशीलता को कितना बनाए रखती है।

आज जब भारतीय सिनेमा अपनी जड़ों और पौराणिक कथाओं की ओर नए उत्साह से लौट रहा है, हनुमान का चरित्र फिल्मकारों के लिए एक समृद्ध विषय बना हुआ है। आने वाले समय में तकनीक के विकास के साथ उनकी गाथाओं को और भव्य रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। लेकिन पर्दे की भव्यता से परे हनुमान की सबसे बड़ी ताकत वही रहेगी—भक्ति में शक्ति, सेवा में समर्पण और संकट में अटूट साहस। यही कारण है कि हनुमान केवल एक पौराणिक पात्र नहीं, बल्कि भारतीय जनमानस में जीवित एक ऐसी प्रेरणा हैं, जो हर पीढ़ी को अपने तरीके से आकर्षित करती रहेगी।

संवाद दर्शन
हिन्दी पाक्षिक

सलाहकार संपादक
देवेन्द्र मिश्र

संपादक
संजीव कुमार

प्रकाशक एवं मुद्रक
बिमल कुमार जैन

प्रिंटर्स
लोकवाणी प्रिंटिंग प्रेस,
शशि काम्प्लेक्स,
नाला रोड, कदमकुआँ
पटना

पता
विश्व संवाद केंद्र
104-105, सूर्या अपार्टमेंट,
फ्रेजर रोड, पटना - 800 001
संपर्क = 0612 2216048

ई-मेल- vskpatna@gmail.com
vskbihar@gmail.com
वेबसाइट- www.vskbihar.com









अनुक्रमणिका

पाठकों के नाम पत्र

प्रिय पाठक,

सादर नमस्कार।

आशा है आप स्वस्थ एवं सानंद होंगे। विदित हो कि 'संवाद दर्शन' पत्रिका राष्ट्र तथा प्रदेश की घटनाओं और महत्वपूर्ण बिन्दुओं को आधार बनाकर प्रकाशित हो रही है। आपका स्नेह हमेशा प्राप्त होता रहता है। पत्रिका द्वारा सदस्यों/ पाठकों के नाम, पता, दूरभाष तथा ई–मेल में सुधार के लिए योजना चलायी जा रही है। संवाद दर्शन परिवार आशा करता है कि पत्रिका आप तक पहुंच रही होगी। यदि नहीं पहुंच रही है तो आप हमारे दूरभाष पर संपर्क कर या हमारे पते पर पत्र लिखकर अपने पता का सुधार करवा सकते हैं।

शेष शुभ!

जाति, न्याय और लोकतंत्र: भारतीय समाज की एक असहज सच्चाई



भारत का लोकतंत्र केवल एक शासन प्रणाली नहीं, बल्कि एक नैतिक संकल्प है—समानता, न्याय और बंधुत्व का। संविधान की प्रस्तावना इसी संकल्प का उद्घोष करती है। परंतु आज जब हम अपने चारों ओर देखते हैं, तो यह प्रश्न असहज रूप से सामने खड़ा होता है कि क्या हम उस संकल्प के साथ न्याय कर पा रहे हैं? या फिर लोकतंत्र का यह ढांचा भीतर से दरक चुका है, जहाँ कानून, व्यवस्था और सत्ता—तीनों ही जाति, वर्ग और पहचान की गिरफ़्त में हैं।

आज कानून बनते हैं, संशोधन होते हैं, नए-नए प्रावधान जोड़े जाते हैं, परंतु उनके पीछे की मंशा पर सवाल उठना स्वाभाविक हो गया है। क्या ये कानून नागरिक के लिए हैं, या किसी विशेष समूह, वर्ग या वोट बैंक के लिए? जब विधायन का आधार तर्क और न्याय की जगह सामाजिक पहचान लेने लगे, तब लोकतंत्र का संतुलन बिगड़ना तय है। कानून का काम समाज को जोड़ना है, लेकिन यदि वही समाज को खाँचों में बाँटने का माध्यम बन जाए, तो यह स्थिति केवल चिंताजनक नहीं, बल्कि खतरनाक भी है।

न्याय व्यवस्था की भूमिका किसी भी लोकतंत्र में सबसे पवित्र मानी जाती है। न्यायालय वह स्थान है जहाँ अंतिम उम्मीद जाकर टिकती है। लेकिन जब यह धारणा बनने लगे कि न्याय की दहलीज़ पर पहुँचने से पहले व्यक्ति की जाति, हैसियत और राजनीतिक संरक्षण देखा जा रहा है, तो विश्वास की नींव हिलने लगती है। न्याय केवल निर्णय नहीं होता; वह भरोसा होता है। और जब यह भरोसा टूटता है, तो उसका असर केवल एक व्यक्ति पर नहीं, पूरे समाज पर पड़ता है। आज न्यायालयों में लंबित मामलों की संख्या, फैसलों में देरी, और कुछ मामलों में दिखता स्पष्ट या अप्रत्यक्ष पक्षपात—ये सब लोकतंत्र के स्वास्थ्य पर गंभीर प्रश्नचिह्न हैं।

लोकतंत्र के नाम पर सत्य का क्षरण एक धीमी लेकिन निरंतर प्रक्रिया है। यह एक दिन में नहीं होता। पहले असुविधाजनक सवालों को 'राष्ट्र-विरोधी' कहा जाता है, फिर आलोचना को 'षड्यंत्र' बताया जाता है, और अंततः सच बोलने वालों को हाशिए पर धकेल दिया जाता है। जब संसद में बहसें समाधान से अधिक शोर बन जाएँ, जब मीडिया का एक बड़ा हिस्सा सत्ता का विस्तार बन जाए, और जब सामाजिक विमर्श भावनाओं के उकसावे तक सिमट जाए—तो समझ लेना चाहिए कि लोकतंत्र केवल औपचारिक रूप से जीवित है, उसकी आत्मा संकट में है।

समरसता की बातें हर मंच से होती हैं, लेकिन ज़मीनी सच्चाई इसके उलट दिखाई देती है। समाज में विभाजन गहराता जा रहा है—धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर, भाषा और क्षेत्र के नाम पर। सत्ता इन विभाजनों को पाटने के बजाय, अक्सर इन्हें साधन की तरह इस्तेमाल करती है। 'फूट डालो और राज करो' अब इतिहास की किताबों में दर्ज कोई औपनिवेशिक नीति नहीं रही, बल्कि समकालीन राजनीति की एक प्रभावी रणनीति बन चुकी है। जब जनता आपस में उलझी रहती है, तब सत्ता से सवाल करने की ताक़त कमजोर

पड़ जाती है।

यह विडंबना ही है कि एक ओर जाति-पाति मिटाने की बातें होती हैं, दूसरी ओर हर राजनीतिक गणित जातिगत समीकरणों पर आधारित होता है। चुनावी टिकटों से लेकर नीतिगत फैसलों तक, जाति एक निर्णायक तत्व बनी हुई है। ऐसे में 'जाति से ऊपर उठने' का उपदेश खोखला प्रतीत होता है। यदि सचमुच जाति अप्रासंगिक होती, तो उसका उल्लेख हर नीति, हर बहस और हर चुनाव में इतनी प्रमुखता से क्यों होता?

आशाओं के इस देश में निराशा का बढ़ता विस्तार केवल आर्थिक कारणों से नहीं है। बेरोज़गारी, महँगाई और संसाधनों की असमानता तो कारक हैं ही, लेकिन उससे भी बड़ा कारण है—विश्वास का टूटना।

सत्ता का सच से मुँह फेर लेना किसी भी समाज के लिए शुभ संकेत नहीं है। जब शासन केवल अपनी छवि गढ़ने में व्यस्त हो जाए और वास्तविक समस्याओं से आँख चुराने लगे, तब झूठ एक समानांतर यथार्थ रच देता है। इस यथार्थ में आँकड़े चमकदार होते हैं, भाषण ऊँचे होते हैं, लेकिन आम आदमी की ज़िंदगी लगातार कठिन होती जाती है। सच को ढँकने के लिए प्रचार का सहारा लिया जाता है, और धीरे-धीरे जनता को यही सिखाया जाता है कि सवाल करना असभ्यता है।

विधान सभाओं और संसद में सामाजिक न्याय की बातें अक्सर सुनाई देती हैं, लेकिन ज़मीनी स्तर पर वही अन्याय नए-नए रूपों में सामने आता है। नीतियों में सुधार के नाम पर ऐसे प्रावधान लाए जाते हैं, जो या तो आधे-अधूरे होते हैं या फिर नए विवादों को जन्म देते हैं। यह स्थिति तब और गंभीर हो जाती है, जब नीति-निर्माण में प्रभावित वर्गों की वास्तविक भागीदारी न हो, और फैसले ऊपर से थोपे जाएँ।

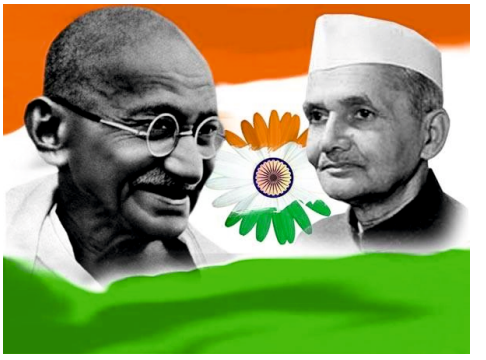
लोकतंत्र की असली परीक्षा संकट के समय होती है। क्या वह सबसे कमजोर नागरिक के साथ खड़ा होता है, या सबसे ताकतवर के साथ? आज यह प्रश्न पहले से अधिक प्रासंगिक है। जब अन्याय किसी 'दूसरे' के साथ होता है, तब समाज का एक बड़ा हिस्सा चुप रहता है। लेकिन यही चुप्पी कल अपने ही अधिकारों के क्षरण का कारण बनती है। चयनात्मक नैतिकता—जहाँ हम केवल अपने हित का अन्याय देखते हैं—लोकतंत्र को भीतर से खोखला कर देती है।

यह संपादकीय किसी एक सरकार, एक दल या एक नेता के विरुद्ध आरोप-पत्र नहीं है। यह एक सामूहिक आत्मावलोकन का आग्रह है। लोकतंत्र केवल शासकों की जिम्मेदारी नहीं, नागरिकों की भी उतनी ही बड़ी जिम्मेदारी है। सवाल पूछना, असहमति जताना और सच के साथ खड़ा होना—यही लोकतंत्र की असली शक्ति है। यदि हम सुविधा के लिए चुप रहना चुनते हैं, तो फिर व्यवस्था के पतन की जिम्मेदारी से भी हम बच नहीं सकते।

आज आवश्यकता है कि न्याय को फिर से उसके मूल अर्थ में लौटाया जाए—निष्पक्ष, निर्भीक और समान। कानून का उद्देश्य सत्ता को सुरक्षित करना नहीं, बल्कि नागरिक के अधिकारों की रक्षा करना होना चाहिए। राजनीति का धर्म ध्रुवीकरण नहीं, समाधान होना चाहिए। और लोकतंत्र का अर्थ केवल पाँच साल में एक बार मतदान करना नहीं, बल्कि हर दिन सजग रहना होना चाहिए।

यदि हम अब भी नहीं चेते, तो आने वाली पीढ़ियाँ हमसे यह नहीं पूछेंगी कि हमने किसे वोट दिया था, बल्कि यह पूछेंगी कि जब समाज बाँटा जा रहा था, जब न्याय पहचान पूछ रहा था, और जब सच को दबाया जा रहा था—तब हमने क्या किया। यही प्रश्न आज के भारत के लोकतंत्र के सामने सबसे बड़ा और सबसे जरूरी सवाल है।

2 अक्टूबर: दो महापुरुष, एक राष्ट्र और अनेक प्रेरणाएं



भारतीय इतिहास में कुछ तिथियां केवल कैलेंडर का हिस्सा नहीं होतीं, बल्कि वे राष्ट्र की चेतना और उसके मूल्यों की याद दिलाती हैं। 2 अक्टूबर ऐसी ही एक महत्वपूर्ण तिथि है। यह दिन राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की जयंती के साथ-साथ देश के पूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की जयंती के रूप में भी मनाया जाता है। एक ही दिन जन्मे इन दोनों महापुरुषों ने अपने जीवन और कर्म से भारत के सार्वजनिक जीवन पर गहरी छाप छोड़ी।

महात्मा गांधी का जीवन सत्य, अहिंसा और आत्मअनुशासन के सिद्धांतों के इर्द-गिर्द रहा। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन को केवल राजनीतिक संघर्ष नहीं रहने दिया, बल्कि उसे सामाजिक और नैतिक आंदोलन का स्वरूप दिया। सत्याग्रह और अहिंसा के माध्यम से उन्होंने यह विश्वास मजबूत किया कि अन्याय का विरोध बिना हिंसा के भी किया जा सकता है। उनके लिए स्वतंत्रता का अर्थ केवल विदेशी शासन से मुक्ति नहीं था, बल्कि ऐसा समाज बनाना भी था जिसमें अंतिम व्यक्ति के सम्मान और अधिकार की रक्षा हो।

गांधीजी ने स्वच्छता, ग्राम स्वराज, आत्मनिर्भरता, श्रम की गरिमा और सामाजिक सद्भाव जैसे विषयों को भी अपने विचारों में महत्वपूर्ण स्थान दिया। आज जब दुनिया हिंसा, असमानता, पर्यावरण संकट और सामाजिक तनाव जैसी चुनौतियों से जूझ रही है, गांधी के विचारों पर नए सिरे से चर्चा होती है।

इसी दिन जन्मे लाल बहादुर शास्त्री सादगी, ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के लिए याद किए जाते हैं। प्रधानमंत्री के रूप में उनका कार्यकाल भले ही अपेक्षाकृत छोटा रहा, लेकिन उनका व्यक्तित्व भारतीय राजनीति में सादगी और जिम्मेदारी का उदाहरण बना। "जय जवान, जय किसान" का उनका आह्वान देश की सुरक्षा और कृषि—दोनों के महत्व को रेखांकित करता है।

2 अक्टूबर हमें केवल अतीत को याद करने का अवसर नहीं देता, बल्कि वर्तमान को परखने का मौका भी देता है। गांधी का सत्य और अहिंसा का संदेश तथा शास्त्री की सादगी और कर्तव्यबोध आज भी सार्वजनिक जीवन के लिए प्रासंगिक हैं।

इस दिन स्कूलों, सरकारी संस्थानों और सामाजिक संगठनों में कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। गांधी जयंती के अवसर पर संयुक्त राष्ट्र द्वारा मनाया जाने वाला अंतरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस भी इस बात का प्रतीक है कि गांधी के विचार भारत की सीमाओं से आगे वैश्विक विमर्श का हिस्सा बन चुके हैं।

2 अक्टूबर का वास्तविक महत्व तभी सार्थक होगा, जब हम इन महापुरुषों को केवल तस्वीरों, भाषणों और समारोहों तक सीमित न रखें, बल्कि उनके जीवन से जुड़े मूल्यों को अपने व्यवहार में उतारने का प्रयास करें। सत्य के प्रति प्रतिबद्धता, हिंसा से दूरी, श्रम का सम्मान, सादगी और राष्ट्र के प्रति जिम्मेदारी—यही 2 अक्टूबर की सबसे बड़ी सीख है।

दो महापुरुषों की जयंती वाला यह दिन हमें याद दिलाता है कि राष्ट्र निर्माण केवल बड़े फैसलों से नहीं, बल्कि करोड़ों नागरिकों के छोटे-छोटे जिम्मेदार कदमों से होता है।



नेपाल में जलप्रलय:
भीषण बाढ़ और लैंडस्लाइड से भारी तबाही

नेपाल में तिब्बत से आई बाढ़ से मची तबाही का मूल कारण भूकंप नहीं बल्कि हिमनद का फटकर बाढ़ में परिवर्तित हो जाना है। अमेरिकी भूगर्भीय सर्वेक्षण ने अपना आरंभिक आंकलन बदलते हुए कहा है कि यह आपदा भूकंप के कारण नहीं, अपितु एक हिमनद के बम की तरह फटकर ढहने और उसके मलबे के तेज बहाव के कारण आई है। इसके पहले इसी एजेंसी ने गोसाईं कुंड के लगभग 47 किमी उत्तर में 4.4 तीव्रता से आए भूकंप को हिमनद के टूटने का संभावित कारण बताया था। नेपाल के अखबार 'काठमांडू पोस्ट' के अनुसार 7,245 मीटर ऊंचीं लांगटांग लिरुंग चोटी के उत्तरी हिस्से पर यह हिमस्खलन हुआ है। इससे पहले 2015 में आए भूकंप के केंद्र में भी यही पहाड़ था। हालांकि अभी भी नेपाल से सटे तिब्बत में हिमालय की ऊंचाई पर हिमनद के टूटने जो बाढ़ आई है, उसके कारणों की पड़ताल की जा रही है। बढ़ते वैष्विक तापमान के चलते जलवायु परिवर्तन भी इस आपदा का कारण माना जाता रहा है। ऐसा है तो इस जल प्रलय के समाधान दुनिया के विकसित देषों को खोजने की जरूरत है।

फिलहाल चीन द्वारा हिमालयी पर्यावरण बिगाड़ने में सर्वाधिक योगदान है। इस तबाही की शुरूआत भी नेपाल-चीन सीमा पर बहने वाली ल्हेंदे नदी में बाढ़ के मलबे में आई रुकावट से मानी जा रही है। इस रुकावट के टूटने से पहले एक बड़ी हिमनद झील बन गई थी। इसके फटने से भोटेकोषी नदी में कीचड़ और बड़े-बड़े पत्थरों का सैलाब आ गया था। इसके नीचे नेपाल की बस्तियों में बहने से तबाही मची। नतीजतन 359 लोग बाढ़ ने लील लिए और 826 लापता हैं, इनमें भारत समेत अन्य देशों के 590 पर्यटक हैं। इस घटना से पता चलता है कि जलवायु परिवर्तन का सीधा असर

उच्च हिमालयी क्षेत्रों पर तेज गति से हो रहा है। यहां तक की जिन हिमनद (ग्लेशियर) झीलों के आसपास मानव की आवाजाही अत्यंत सीमित है, वहां भी अब जलवायु परिवर्तन के चलते मौसम का मिजाज खतरे की घंटी बजाने लगा है। नेपाल में जिस हिमनद के टूटने से जल-प्लावन आया है, वह 17 हजार फीट की ऊंचाई पर स्थित थी और मानव बस्तियां भी नहीं थीं। अधिक ऊंचाई पर होने के कारण आवाजाही भी कम थी। इंटरनेशनल सेंटर फाॅर इंटीग्रेटेड माउंटेन डेवलपमेंट और नेपाल सरकार के विज्ञानियों द्वारा किए आंकलन से पता चला है कि ऐसी 47 हिमनद झीलें हैं, जिन्हें खतरनाक माना गया है। चेतावनी भी दी गई है कि इनसे नेपाल की नदी प्रणालियों में इन हिमनदों के फटने से भयानक बाढ़ आ सकती है। इनमें से 21 झीलें हिमनद नेपाल में हैं और 25 झीलें तिब्बत की सीता पर स्थित हैं। ये हिमनद उन नदियों के उद्गम स्थलों पर हैं, जो दक्षिण की ओर नेपाल में बहती हैं। अतएव इनके फटने से बाढ़ आती है तो नीचे की ओर बसे जन-समुदायों और बुनियादी संरचना के लिए बड़ा संकट पैदा हो सकता है। यही संकट वर्तमान में नेपाल की संरचनात्मक तबाही में देखा जा रहा है। यह चेतावनी यदि अनुमान पर खरी उतरती है तो कहा जा सकता है कि नेपाल बर्बादी के मुहाने पर बसा है।

भारत में भी इसरो और राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधीकरण के आंकड़ें डराने वाले हैं। भारतीय हिमालयी क्षेत्र में 7,500 से अधिक हिमनद झीलें हैं, इनमें से 189 'रेड जोन' में रेखांकित की गई हैं। इस संकेत से पता चलता है कि ये झीलें कभी भी फटकर उत्तराखंड, हिमाचल और जम्मू-कश्मीर में तबाही का कारण बन सकती हैं। क्योंकि इन झीलों में बढ़ते वैश्विक तापमान के चलते बर्फ पिघलने से पानी की मात्रा लगातार बढ़ रही है। यही नहीं



अध्ययन बताते हैं कि सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी क्षेत्रों की चोटियों पर छोटी-बड़ी हजारों झीलें हैं। ये झीलें पहाड़ों पर अत्यंत तेज गति से प्राकृतिक रूप में आकार ले रही हैं। लद्दाख में ही ऐसी 3,219 झीलों की पहचान की गई है। हिमालय के भारतीय क्षेत्र में कुल हिमनदों की संख्या में से 2,431 ऐसे हिमनद हैं, जो जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के चलते 10 हेक्टेयर क्षेत्र में फैल गई हैं। इन्हें सर्वेक्षणों ने अत्यधिक जोखिम भरी झीलों की श्रेणी में रखा है। हालांकि कुछ हिम झीलों का आकार तेजी से सिकुड़ भी रहा है। हिमनद झीलों के अनियंत्रित ढंग से बढ़ते आकार की ठोस सच्चाई इसरो के उपग्रहों से लीं गईं तस्वीरों के अध्ययन से सामने आई है। इस स्थिति ने विज्ञानियों की चिंता बढ़ा दी है। हिमाचल प्रदेश की गेफांग घाट झील का आकार सर्वाधिक 178 प्रतिशत बढ़ा है। इसका कुल क्षेत्रफल 101.3 हेक्टेयर हो गया है। हिमालयी क्षेत्र में 10 लाख लोग ग्लेशियर झीलों के 10 किमी के दायरे में रहते हैं। याद रहे पिछले साल पांच अगस्त 2025 को उत्तराखंड के उत्तरकाशी जिले में धराली गांव के खीर क्षेत्र में बादल फटने के कारण भीषण बाढ़ और मलबे

में यह पूरा क्षेत्र डूब गया था। बादल फटने से हुई तेज बारिश ने गंगोत्री और हर्शिल के क्षेत्र में आने वाली हिमनद झीलों को नाले में बदल दिया था।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा 2020 में किए गए एक अध्ययन से भी स्पष्ट हुआ था कि जलवायु परिवर्तन और पानी का अटूट संबंध है। इस रिपोर्ट के मुताबिक दक्षिण एशिया को 2030 तक बाढ़ों की कीमत प्रत्येक वर्ष चुकानी पड़ेगी। इनसे करीब सालाना 15.6 लाख करोड़ की हानि उठानी पड़ सकती है। साफ है, वैश्विक तापमान के बढ़ते खतरे ने आम आदमी के दरवाजे पर दस्तक दे दी है। दुनिया में कहीं भी एकाएक बारिष, बाढ़, बर्फबारी, बादल फटने या फिर सूखे का कहर का सामना करना पड़ सकता है। आंधी, तूफान और फिर यकायक ज्वालामुखियों के फटने की हैरतअंगेज घटनाएं भी यही संकेत दे रही हैं कि अदृष्य खतरे इर्दगिर्द ही कहीं मंडरा रहे हैं। समुद्र और अंटार्कटिका जैसे बर्फीले क्षेत्र भी इस बदलाव के संकट से दो-चार हो रहे हैं। दरअसल वायुमंडल में अतिरिक्त कार्बन डाइऑक्साइड महासागरों में भी अवषोशित होकर गहरे समुद्र में बैठ जाती है। यह वर्षों तक जमा रहती है। पिछली दो शताब्दियों में 525 अरब टन कचरा महासागरों में विलय हुआ है। इसके इतर मानवजनित गतिविधियों से उत्सर्जित कार्बन डाइऑक्साइड का 50 फीसदी भाग भी समुद्र की गहराइयों में समा गया है। इस अतिरिक्त कार्बन डाइऑक्साइड के जमा होने के कारण अंटार्कटिका के चारों ओर फैले दक्षिण महासागर में इस कार्बन डाइऑक्साइड को सोखने की क्षमता निरंतर कम हो रही है। इस स्थिति का निर्माण खतरनाक है। ब्रिटिश अंटार्कटिक सर्वेक्षण के मुताबिक वैज्ञानिकों का कहना है कि दक्षिण महासागर कार्बन डाइऑक्साइड से लबालब हो गया है। नतीजतन अब समुद्र इसे अवषोशित करने की बजाय वायुमंडल में ही उगलने लग गया है। अगर इसे जल्दी नियंत्रित नहीं किया गया तो वायुमंडल का तापमान तेजी से बढेगा, जो न केवल मानव प्रजाति, बल्कि सभी प्रकार के जीव-जंतुओं के अस्तित्व के लिए खतरनाक होगा।

हिमालय पर कई वर्षों से अध्ययन कर रहे 'वाडिया भू-विज्ञान संस्थान' की रिर्पोट के अनुसार हिमालय के हिमखंडों में काले कार्बन की मात्रा लगातार बढ़ रही है। यह मात्रा सामान्य से ढाई गुना बढ़कर 1899 नैनोग्राम हो गई है। दरअसल काले कार्बन से तापमान में वृद्धि होती है। यह सूर्य के प्रकाश को अवषोशित करने में अत्यंत प्रभावी है। इससे हिमालय और आर्कटिक जैसे हिमखंडों में बर्फ पिघलने लगती है। यदि किसी साल बरसात में औसत से कम बारिश होती है तो बर्फ पिघलने की मात्रा और अधिक बढ़ जाती है। वायु प्रदूषण से भी हिमखंड दूशित कार्बन की चपेट में आए हैं। उत्तराखंड अंतरिक्ष उपयोग केंद्र ने निश्कर्श निकाला है कि पिछले 37 सालों में हिमाच्छादित क्षेत्रफल में 26 वर्ग किलोमीटर की कमी आई है। इस क्षेत्र में पहले स्थाई स्नोलाईन 5700 मीटर थी, जो अब 5200 मीटर के बीच घट-बढ़ रही है। यही बजह है कि नंदादेवी जैव-मंडल (बायोस्फियर) आरक्षित ऋशि गंगा के दायरे का कुल 243 वर्ग किमी क्षेत्र बर्फ से ढका था, लेकिन यह 2020 में 217 वर्ग किमी ही रह गया है। साफ है, तापमान बढ़ने का सिलसिला बना रहा और यदि बर्फ इसी तरह पिघलती रही तो जीव-जंतुओं और वनस्पतियां ही नहीं नेपाल की तरह मानव आबादियां भी जल प्रलय की चपेट में आती जाएंगी।

चौथा स्तंभ खतरे में? मीडिया की आज़ादी और पत्रकारों की सुरक्षा का सच

पत्रकारिता और बदलते दौर का सच एक आम विमर्श का मुद्दा बन गया है। अमूमन यह देखा जा रहा है कि आमतौर पर देश के ज्वलंत मुद्दों पर सत्ता और संस्थाओं पर सवाल उठाने के बजाय सबसे पहले मीडिया को घेरे में लिया जाता है और उसकी विश्वसनीयता का संकट खड़ा हो जाता है और उसे कठघरे में खड़ा किया जाता है। पत्रकारिता की स्वतंत्रता, उसके दायित्व और लोकतंत्र में उसकी भूमिका पर गंभीर विमर्श करना आवश्यक है।

लोकतंत्र में मीडिया को चौथा स्तंभ कहा जाता है। सत्ता चाहे किसी भी दल की हो, पत्रकारिता का मूल दायित्व सत्ता का गुणगान करना नहीं, बल्कि जनता के सवालों को सामने लाना और शासन-प्रशासन से जवाब मांगना है। हालांकि लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार अगर अच्छा काम कर रही है तो हमारा दायित्व बनता है कि हम उन कार्यों को भी समाज के सामने रखें सिर्फ नैरेटिव के तहत सरकारों को बदनाम करना यह पत्रकारिता नहीं है। हां लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार लोकहित संरक्षण के लिए सबसे पहले जवाब दे है।

लेकिन बदलते दौर में पत्रकारिता और सत्ता के बीच संबंधों को लेकर कई गंभीर सवाल उठ रहे हैं। यह चिंता लगातार सामने आ रही है कि पत्रकारों और पत्रकारिता के खिलाफ एक नकारात्मक नैरेटिव तैयार किया जा रहा है। सत्ता के पक्ष में लिखने-बोलने वाले पत्रकारों को सम्मान और मंच मिलना तथा जमीनी मुद्दों और सरकार से असहज सवाल पूछने वाले पत्रकारों को कानूनी कार्रवाई, दबाव या विवादों का सामना करना। लोकतंत्र के लिए स्वस्थ संकेत



नहीं कहा जा सकता।

हाल में झारखंड में पत्रकार अमन चोपड़ा के खिलाफ दर्ज एफआईआर का मामला भी इसी बहस का हिस्सा बन गया है। मैं यह दावा नहीं कर रहा कि अमन चोपड़ा किस विचारधारा के समर्थक हैं या किस राजनीतिक विचार के पक्षधर हैं। मैं केवल इतना कहना चाहता हूं कि वे एक पत्रकार हैं और यदि उन्होंने झारखंड में चल रहे छात्र आंदोलन की कवरेज की है, तो सवाल यह भी उठता है कि उनके खिलाफ ही एफआईआर क्यों दर्ज की गई? क्या उसी आंदोलन की कवरेज करने वाले अन्य पत्रकारों के खिलाफ भी इसी तरह की कार्रवाई हुई? यदि नहीं हुई तो ऐसा अंतर क्यों? यह सवाल किसी व्यक्ति विशेष के समर्थन का नहीं, बल्कि पत्रकारिता के अधिकार और समान मानदंड का है।

मैं स्पष्ट करना चाहता हूं कि मैं किसी सरकार का न तो समर्थक हूं और न विरोधी। मेरा मानना है कि पत्रकारिता का काम सत्ता के पक्ष या विपक्ष में खड़ा होना नहीं, बल्कि तथ्यों के पक्ष में खड़ा होना है। जो खबर है, वह खबर के रूप में सामने आनी चाहिए। पत्रकार को भी किसी राजनीतिक या वैचारिक पूर्वाग्रह से मुक्त होकर घटनाओं की रिपोर्टिंग करनी चाहिए। लेकिन यदि कोई पत्रकार तथ्यात्मक और निष्पक्ष तरीके से किसी आंदोलन, प्रदर्शन या

जनसमस्या को सामने रखता है, तो केवल उसकी रिपोर्टिंग के आधार पर उसके खिलाफ कानूनी कार्रवाई का सवाल निश्चित रूप से विचारणीय है। हालांकि उसने कुछ निर्धारित नैरेटिव के तहत अगर रिपोर्टिंग की गई है यह गलत है हम इसका समर्थन नहीं करते हैं।

पत्रकारों की सुरक्षा के लिए कानून क्यों नहीं?

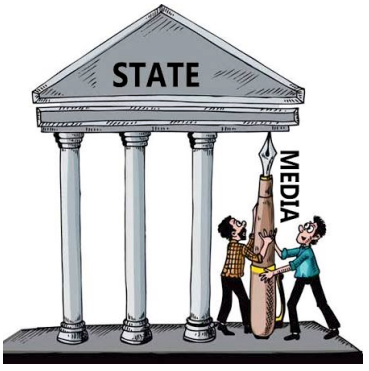
आज आवश्यकता इस बात की है कि संसद और राज्य विधानसभाओं में पत्रकारों की सुरक्षा तथा उनकी पेशेवर स्वतंत्रता को लेकर गंभीर चर्चा हो। पत्रकारों को खबरों की रिपोर्टिंग करते समय भयमुक्त वातावरण मिले, यह लोकतांत्रिक व्यवस्था की जिम्मेदारी है।

यदि किसी पत्रकार के खिलाफ एफआईआर दर्ज होती है, तो यह देखा जाना चाहिए कि मामला वास्तव में आपराधिक कृत्य का है या पत्रकार द्वारा की गई रिपोर्टिंग और अभिव्यक्ति से जुड़ा है। पत्रकार गलत हो तो कानून अपना काम करे, लेकिन केवल असहमति, आलोचना या रिपोर्टिंग के कारण पत्रकार को कानूनी कार्रवाई का सामना करना पड़े, तो यह चिंता का विषय है।

मेरी राय में देश में ऐसा स्पष्ट कानूनी ढांचा होना चाहिए जिसमें पत्रकारों की पेशेवर स्वतंत्रता की रक्षा हो और साथ ही पत्रकारिता की आड़ में कानून का उल्लंघन करने वालों के खिलाफ भी निष्पक्ष कार्रवाई का रास्ता खुला रहे। यानी स्वतंत्रता के साथ जवाबदेही और अधिकार के साथ जिम्मेदारी, दोनों का संतुलन जरूरी है।

वैश्विक रैंकिंग से आगे भी बड़ा सवाल

भारत में मीडिया की स्वतंत्रता को लेकर वैश्विक स्तर पर जारी होने वाली विभिन्न रैंकिंग और रिपोर्टों पर बहस होती रही है। इन रैंकिंग के



आकलन और मानकों पर मतभेद हो सकते हैं, लेकिन इससे उस मूल सवाल को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि क्या देश में पत्रकार अपने सवाल पूछने और जमीनी हकीकत दिखाने के लिए पर्याप्त रूप से स्वतंत्र महसूस करते हैं?

पत्रकारों के साथ मारपीट, धमकी, दबाव या कानूनी विवादों की घटनाएं जब सामने आती हैं तो स्वाभाविक रूप से मीडिया की स्वतंत्रता पर सवाल उठते हैं। सत्ता चाहे केंद्र में हो या राज्य में, उसे ऐसे मामलों में अधिक संवेदनशील और पारदर्शी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

सत्ता बदले तो नजरिया भी बदलना चाहिए

सत्ता में बैठे लोगों को यह समझना होगा कि आज की सत्ता कल विपक्ष में हो सकती है और आज विपक्ष में बैठा व्यक्ति कल सत्ता में आ सकता है। इसलिए मीडिया की स्वतंत्रता का सवाल किसी एक दल या सरकार का सवाल नहीं है। यह व्यवस्था और लोकतंत्र का सवाल है। आपने कई मुद्दे ऐसे देखे होंगे जब पत्रकार किसी नेता से सवाल पूछता है तो कुछ नेता ऐसे हैं जो उल्टा उससे ही सवाल करने लगते हैं। उसकी पत्रकारिता के सवाल पर उसकी जाति और धर्म तक उतर आते हैं।

यदि आज किसी पत्रकार के खिलाफ कार्रवाई को इसलिए उचित ठहराया जाता है क्योंकि वह सरकार के पक्ष में नहीं लिख रहा, तो कल वही तर्क किसी दूसरी सरकार के समय किसी दूसरे पत्रकार के खिलाफ इस्तेमाल हो सकता है। इसलिए लोकतंत्र के हित में जरूरी है कि पत्रकारिता के लिए समान और निष्पक्ष मानदंड तय हों।

दिल्ली में विभिन्न आंदोलनों और प्रदर्शनों के दौरान पत्रकारों के खिलाफ कितने मामले दर्ज हुए, इसका आंकड़ा मेरे पास नहीं है। यह भी मैं दावे के साथ नहीं कह सकता कि ऐसे मामले हुए या नहीं हुए। लेकिन यदि किसी पत्रकार के खिलाफ केवल उसकी पत्रकारिता के कारण एफआईआर दर्ज की गई है, तो मैं व्यक्तिगत रूप से ऐसी कार्रवाई का समर्थन नहीं करता।

सोशलमीडिया ने मुख्यधारा की पत्रकारिता को दी चुनौती। मीडिया के बदलते स्वरूप को भी समझना जरूरी है। मुख्यधारा की मीडिया अपनी जगह महत्वपूर्ण है, लेकिन सोशलमीडिया ने समाचारों के प्रसार और उपभोग का पूरा ढांचा बदल दिया है।

दिल्ली, झारखंड के छात्र आंदोलन से लेकर देश के विभिन्न आंदोलनों और जनमुद्दों तक, सोशलमीडिया ने कई बार ऐसे विषयों को व्यापक मंच दिया जिन्हें मुख्यधारा की मीडिया में अपेक्षित जगह नहीं मिल सकी। इसका परिणाम यह है कि बड़ी संख्या में लोग अब सोशलमीडिया के माध्यम से खबरें देख और समझ रहे हैं।

यह मुख्यधारा की पत्रकारिता के लिए एक चुनौती भी है और आत्ममंथन का अवसर भी।

लोगों का भरोसा किसी एक माध्यम से नहीं, बल्कि सच्ची, तथ्यपूर्ण और निष्पक्ष पत्रकारिता से बनता है। यदि किसी मीडिया संस्था को लगता है कि उसकी खबरों पर जनता का भरोसा कम हो रहा है, तो उसे यह विचार करना होगा कि कहीं वह सत्ता, बाजार, विचारधारा या संस्थागत दबाव के बीच अपनी मूल पत्रकारिता से तो दूर नहीं हो रही।

पत्रकारिता का भविष्य किसके साथ है?

पत्रकारिता किसी सत्ता, दल या विचारधारा की निजी संपत्ति नहीं है। पत्रकारिता जनता की आवाज है। सत्ता से सवाल पूछना पत्रकारिता का अपराध नहीं, बल्कि उसका लोकतांत्रिक दायित्व है। उसी तरह पत्रकार का भी दायित्व है कि वह खबर को तथ्य, प्रमाण और निष्पक्षता के साथ प्रस्तुत करे।

हमें ऐसी पत्रकारिता चाहिए जो न सत्ता की आंखों पर पट्टी बांधे और न विपक्ष के प्रति आंखें बंद करे। जो सरकार अच्छा काम करे, उसकी प्रशंसा होनी चाहिए और जहां सवाल हों, वहां सवाल भी उठने चाहिए।पत्रकारिता का असली पक्ष सत्ता या विपक्ष नहीं, बल्कि सत्य होना चाहिए।

यदि किसी पत्रकार ने कानून का उल्लंघन किया है तो जांच और कार्रवाई कानून के अनुसार होनी चाहिए। लेकिन यदि केवल उसकी पत्रकारिता, रिपोर्टिंग या असहमति के कारण उसके खिलाफ कार्रवाई होती है, तो उस पर सवाल उठना भी लोकतांत्रिक अधिकार है।

सत्ता को अपना नजरिया बदलने की जरूरत है और पत्रकारिता को भी आत्ममंथन की। दोनों पक्षों की जिम्मेदारी है कि लोकतंत्र की बुनियाद कमजोर न हो। क्योंकि अंततः सवाल सिर्फ एक पत्रकार का नहीं है। सवाल यह है कि क्या आने वाली पीढ़ियों के पत्रकार बिना भय के सवाल पूछ पाएंगे? और यदि पत्रकार सवाल पूछने से डरने लगे, तो फिर लोकतंत्र में जनता के सवाल कौन पूछेगा?



कैमरे की जद में प्राइवेसी:
चेंजिंग रूम में हिडन कैमरे का काला कारोबार

हर सभ्य समाज की पहचान इस बात से होती है कि वह अपने नागरिकों की गरिमा, निजता और सुरक्षा को कितना महत्व देता है। विशेषकर महिलाओं की निजता की रक्षा किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था का मूल दायित्व है। लेकिन जब ऐसे स्थान, जहाँ व्यक्ति स्वयं को सबसे अधिक सुरक्षित समझता है—जैसे चेंजिंग रूम, ट्रायल रूम, फोटो स्टूडियो, जिम, ब्यूटी पार्लर या होटल—वहीं उसकी निजता पर हमला होने लगे, तब यह केवल एक आपराधिक घटना नहीं रहती, बल्कि पूरे समाज के लिए चेतावनी बन जाती है।

हिसार के निरंकारी रोड स्थित एक फोटो स्टूडियो के चेंजिंग रूम में कथित रूप से हिडन कैमरा मिलने की घटना ने हर संवेदनशील नागरिक को झकझोर दिया है। जानकारी के अनुसार, फोटो शूट के लिए पहुँची एक युवती ने चेंजिंग रूम में कपड़े बदलते समय दीवार में कुछ संदिग्ध दिखाई देने पर अपने मोबाइल की टॉर्च से जांच की और एक छिपा हुआ कैमरा देखा। उसने तत्काल पुलिस को सूचना दी, जिसके बाद पुलिस ने कार्रवाई करते हुए कैमरा जब्त किया और स्टूडियो संचालक को गिरफ्तार कर लिया। यह कार्रवाई सराहनीय है, लेकिन इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि इस घटना को केवल एक पुलिस केस मानकर भुलाया न जाए, बल्कि इसे समाज, प्रशासन और कानून के लिए गंभीर चेतावनी के रूप में देखा जाए।

यह घटना अनेक प्रश्न छोड़ जाती है। क्या यह कैमरा पहली बार लगाया गया था? क्या इससे पहले भी किसी की रिकॉर्डिंग की गई? यदि रिकॉर्डिंग हुई, तो वह कहाँ संग्रहीत है? क्या उसे किसी के साथ साझा किया गया? क्या अन्य लोग भी इस अपराध का शिकार हुए होंगे? इन सभी पहलुओं की वैज्ञानिक और डिजिटल फॉरेंसिक जांच अत्यंत आवश्यक है। ऐसे मामलों में केवल कैमरा बरामद करना पर्याप्त नहीं होता, बल्कि उससे जुड़े प्रत्येक डिजिटल साक्ष्य की जांच भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है।

तकनीक ने हमारे जीवन को आसान बनाया है, लेकिन उसी तकनीक का दुरुपयोग अपराधियों के हाथों में खतरनाक हथियार बन गया है। आज बाजार में अत्यंत छोटे आकार के

कैमरे आसानी से उपलब्ध हैं। इन्हें घड़ी, पेन, चार्जर, स्मोक डिटेक्टर, बल्ब, हुक, पावर बैंक या सजावटी वस्तुओं में छिपाया जा सकता है। आम व्यक्ति के लिए उन्हें पहचानना आसान नहीं होता। यही कारण है कि ऐसे अपराध तेजी से बढ़ रहे हैं और कई बार पीड़ितों को वर्षों तक पता भी नहीं चलता कि उनकी निजी गतिविधियाँ रिकॉर्ड की जा चुकी हैं।

ऐसे अपराध केवल निजता का उल्लंघन नहीं करते, बल्कि व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालते हैं। यदि किसी महिला को यह पता चले कि उसके कपड़े बदलते समय की वीडियो रिकॉर्डिंग किसी ने बना ली है, तो वह केवल कानूनी पीड़िता नहीं रहती, बल्कि लंबे समय तक मानसिक तनाव, भय, शर्म और सामाजिक दबाव से भी गुजरती है। कई मामलों में पीड़ित अवसाद, आत्मग्लानि और सामाजिक अलगाव का भी सामना करते हैं। इसलिए ऐसे अपराधों को केवल तकनीकी अपराध नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा पर हमला माना जाना चाहिए।

इस घटना का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष विश्वास का टूटना है। कोई भी व्यक्ति फोटो स्टूडियो में इस विश्वास के साथ जाता है कि वहाँ उसकी निजता सुरक्षित रहेगी। यदि ऐसे प्रतिष्ठानों में ही लोग असुरक्षित महसूस करने लगें, तो समाज में विश्वास की नींव कमजोर हो जाती है। इसलिए प्रत्येक फोटो स्टूडियो, ब्यूटी पार्लर, जिम, ट्रायल रूम और होटल संचालक की जिम्मेदारी है कि वे अपने संस्थान में पारदर्शिता और सुरक्षा सुनिश्चित करें। यदि कहीं कोई कर्मचारी या संचालक ऐसी हरकत करता है, तो उसका दुष्प्रभाव पूरे व्यवसाय पर पड़ता है।

कानून इस प्रकार के अपराधों को गंभीरता से देखता है। किसी व्यक्ति की अनुमति के बिना उसकी निजी गतिविधियों की रिकॉर्डिंग करना, उसे सुरक्षित रखना, साझा करना या उसका प्रसारण करना विभिन्न कानूनी प्रावधानों के तहत दंडनीय अपराध है। यदि रिकॉर्डिंग का उद्देश्य अश्लील सामग्री तैयार करना या ब्लैकमेल करना हो, तो अपराध और भी गंभीर हो जाता है। इसलिए ऐसे मामलों में त्वरित जांच, डिजिटल साक्ष्यों का संरक्षण और समयबद्ध न्याय आवश्यक है।

पुलिस की भूमिका केवल एफआईआर दर्ज करने तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। जांच एजेंसियों को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि कैमरे से जुड़े सभी डिजिटल उपकरण जब्त किए जाएँ, हार्ड डिस्क, मेमोरी कार्ड, कंप्यूटर, मोबाइल फोन और क्लाउड स्टोरेज की भी जांच हो। यदि कोई सामग्री इंटरनेट या सोशल मीडिया पर अपलोड की गई हो, तो उसे तुरंत हटाने और संबंधित प्लेटफॉर्म से सहयोग प्राप्त करने की प्रक्रिया भी तेज होनी चाहिए।

साथ ही सरकार को भी इस दिशा में ठोस कदम उठाने होंगे। फोटो स्टूडियो, ट्रायल रूम, ब्यूटी पार्लर, होटल और जिम जैसे प्रतिष्ठानों के लिए समय-समय पर सुरक्षा ऑडिट अनिवार्य किए जा सकते हैं। स्थानीय प्रशासन द्वारा आकस्मिक निरीक्षण किए जाएँ और सुरक्षा मानकों का उल्लंघन पाए जाने पर कड़ी कार्रवाई हो। केवल लाइसेंस देना पर्याप्त नहीं है; उसकी निगरानी भी आवश्यक है।

महिलाओं और युवाओं में डिजिटल सुरक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ाना भी समय की आवश्यकता है। किसी भी चेंजिंग रूम में प्रवेश करने से पहले एक सामान्य निरीक्षण करना, दीवारों, शीशों, चार्जर, स्मोक डिटेक्टर या अन्य असामान्य वस्तुओं पर ध्यान देना, किसी भी संदिग्ध वस्तु की सूचना तुरंत प्रबंधन और पुलिस को देना—ये छोटी-छोटी सावधानियाँ कई बड़े अपराधों को रोक सकती हैं। हालांकि यह स्पष्ट

रहना चाहिए कि सुरक्षा की प्राथमिक जिम्मेदारी संस्थान की होती है, न कि ग्राहक की।

शैक्षणिक संस्थानों में भी डिजिटल नैतिकता और निजता के अधिकार पर विशेष पाठ्यक्रम या जागरूकता कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए। आज के युवाओं को यह समझना आवश्यक है कि किसी की निजी तस्वीर या वीडियो बनाना, साझा करना या उसका दुरुपयोग करना कोई शरारत नहीं, बल्कि गंभीर अपराध है। डिजिटल नागरिकता की शिक्षा अब उतनी ही आवश्यक हो गई है जितनी सड़क सुरक्षा या पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा।

मीडिया की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऐसे मामलों की रिपोर्टिंग करते समय पीड़ित की पहचान और निजता की रक्षा सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। सनसनी फैलाने या घटना को मनोरंजन की तरह प्रस्तुत करने से बचना चाहिए। मीडिया का उद्देश्य जागरूकता बढ़ाना और न्याय की प्रक्रिया को मजबूत करना होना चाहिए।

समाज को भी अपनी सोच बदलनी होगी। अक्सर ऐसे मामलों में पीड़ित से ही प्रश्न पूछे जाते हैं—वह वहाँ क्यों गई, उसने क्या पहना था, कितनी बार कपड़े बदले आदि। यह दृष्टिकोण पूरी तरह अनुचित है। अपराधी वही है जिसने निजता का उल्लंघन किया। पीड़ित को दोषी ठहराने की प्रवृत्ति अपराधियों का मनोबल बढ़ाती है और पीड़ितों को शिकायत दर्ज कराने से रोकती है।

हिसार की घटना में युवती की सतर्कता ने संभवतः एक बड़े अपराध का पर्दाफाश किया। यह साहस समाज के लिए प्रेरणा है। यदि किसी को किसी भी स्थान पर संदिग्ध उपकरण दिखाई दे, तो उसे छेड़ने के बजाय तुरंत पुलिस और संबंधित अधिकारियों को सूचना देनी चाहिए ताकि वैज्ञानिक तरीके से साक्ष्य सुरक्षित किए जा सकें।

यह भी आवश्यक है कि न्याय प्रक्रिया शीघ्र और प्रभावी हो। ऐसे मामलों में वर्षों तक मुकदमे लंबित रहने से पीड़ितों का विश्वास कमजोर होता है। त्वरित जांच, समयबद्ध सुनवाई और दोष सिद्ध होने पर कठोर दंड ही समाज में स्पष्ट संदेश देगा कि महिलाओं की निजता से खिलवाड़ करने वालों के लिए कोई स्थान नहीं है।

अंततः यह घटना केवल हिसार की नहीं है। यह पूरे देश के लिए चेतावनी है कि तकनीक का दुरुपयोग हमारी सामाजिक संरचना और व्यक्तिगत स्वतंत्रता दोनों के लिए गंभीर खतरा बन चुका है। इसका समाधान केवल कानून से नहीं होगा। इसके लिए प्रशासन की सक्रियता, न्यायपालिका की संवेदनशीलता, संस्थानों की जिम्मेदारी, मीडिया की सजगता और समाज की नैतिक चेतना—सभी का समन्वित प्रयास आवश्यक है।

निजता किसी व्यक्ति का विशेषाधिकार नहीं, बल्कि उसका मौलिक अधिकार है। इस अधिकार की रक्षा करना केवल संविधान का दायित्व नहीं, बल्कि पूरे समाज की सामूहिक जिम्मेदारी है। यदि हम महिलाओं और नागरिकों को भयमुक्त वातावरण नहीं दे पाए, तो विकास, आधुनिकता और तकनीकी प्रगति के सभी दावे अधूरे रह जाएंगे। हिसार की घटना हमें यही संदेश देती है कि तकनीक का उपयोग मानव गरिमा की रक्षा के लिए होना चाहिए, न कि उसे कुचलने के लिए। अब समय आ गया है कि ऐसे अपराधों के प्रति शून्य सहिष्णुता (Zero Tolerance) की नीति अपनाई जाए, ताकि हर नागरिक विश्वास के साथ सार्वजनिक सुविधाओं का उपयोग कर सके और उसकी निजता पूरी तरह सुरक्षित रह सके।



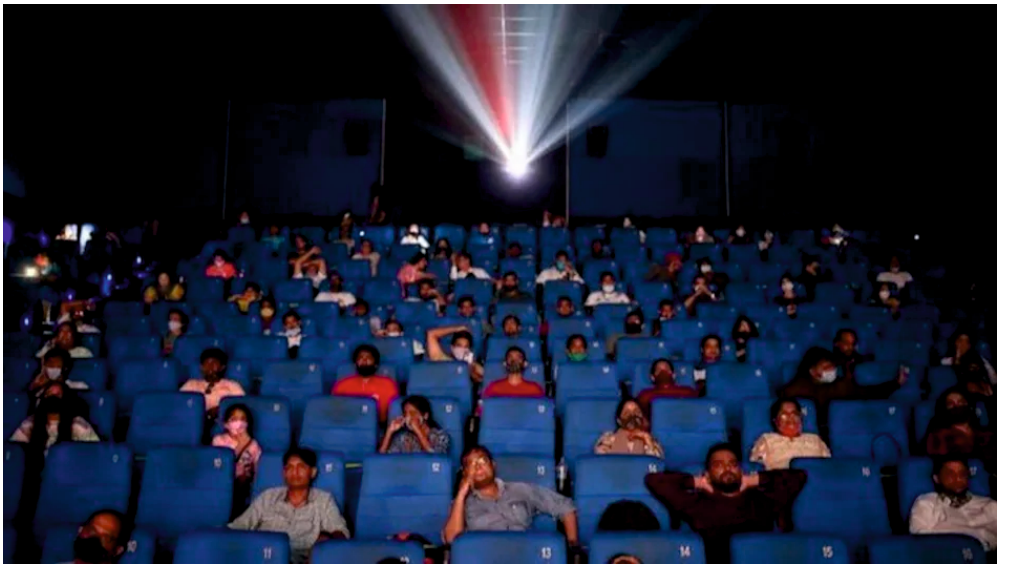
फिल्मों पर नहीं लगेगी VPF

छोटे और मझोले बजट की फ़िल्में बनाने वाले इंडिपेंडेंट निर्माताओं (इंडी फ़िल्म प्रोड्यूसर्स) के लिए ख़ुशख़बरी है। देश की सबसे बड़ी मल्टीप्लेक्स चेन्स में से एक पीवीआर आईनॉक्स ने भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग यानी सीसीआई के सामने प्रस्ताव रखा है कि वह फ़िल्म निर्माताओं से वर्चुअल प्रिंट फ़ीस यानी वीपीएफ़ पूरी तरह बंद कर देगा।लेकिन, पहली नज़र में यह खबर जितनी सीधी दिखाई देती है, मामला उतना सीधा नहीं है। क्योंकि वीपीएफ़ केवल कोई सामान्य शुल्क नहीं था। यह करीब दो दशक से फ़िल्म निर्माताओं और सिनेमाघर संचालकों के बीच चल रही एक बड़ी आर्थिक बहस का हिस्सा रहा है। अगर आपको इसके बारे में विस्तार से जानना है कि वीपीएफ़ आख़िर है क्या? इसे लेकर इतना विवाद क्यों हुआ? और अगर पीवीआर आईनॉक्स इसे खत्म करने का प्रस्ताव दे रहा है तो क्या निर्माता की फ़िल्म रिलीज़ करना वास्तव में सस्ता हो जाएगा? तो आगे की पोस्ट थोड़ा ध्यान से पढ़िए..!पहले समझिए वीपीएफ़ क्या है! एक समय था जब फ़िल्मों के प्रिंट सिनेमाघरों तक पहुंचते थे। 20-25 साल पहले तक रेलयात्रियों को अक्सर ऐसे प्रिंट्स के गोल गोल डिब्बे रेलवे स्टेशन पर भी मालवाहक डिब्बे के सामने दिख जाते थे। हर प्रिंट बनवाने, उसे एक शहर से दूसरे शहर भेजने और फिर सुरक्षित रखने में काफी पैसा ख़र्च होता था।फिर सिनेमा में डिजिटल क्रांति आई। फ़िल्में अब इन प्रिंट्स की बजाय डिजिटल रूप में सिनेमाघरों तक पहुंचने लगीं। इसके लिए सिनेमाघरों में डिजिटल प्रोजेक्टर और उससे जुड़ा पूरा तकनीकी ढांचा लगाया गया। यह बदलाव सिनेमाघरों के लिए महंगा था। और, इसी निवेश की भरपाई के लिए दुनिया के कई हिस्सों में व्यवस्था बनी, वर्चुअल प्रिंट फ़ीस, यानी वीपीएफ़।बहुत आसान शब्दों में कहें तो निर्माता से कहा गया कि अब आपको फ़िल्म की महंगी रीलें बनाने और अलग-अलग सिनेमाघरों तक भेजने की ज़रूरत नहीं है। इसके बदले डिजिटल सिनेमा व्यवस्था के इस्तेमाल के लिए एक शुल्क दीजिए और छुट्टी। जानकारी के मुताबिक़, भारत में करीब 2007 के आसपास

यह व्यवस्था शुरू हुई ।फ़िल्म निर्माताओं को तब यह तर्क समझ में आया कि सिनेमाघर डिजिटल हो रहे हैं, डिजिटल प्रोजेक्टर और उससे जुड़ी तकनीक पर भारी निवेश हो रहा है, तो उस निवेश की कुछ लागत निर्माताओं ने भी साझा करने की बात मान ली। लेकिन, समस्या तब शुरू हुई जब डिजिटल बदलाव लगभग पूरा हो गया और वीपीएफ़ जारी रहा ।फ़िल्म निर्माताओं का तर्क रहा है कि वीपीएफ़ मूल रूप से एक ट्रांजिशन टाइम फ़ीस थी। लेकिन, अब जब डिजिटल परिवर्तन पूरा हो गया तो वीपीएफ़ भी खत्म हो जाना चाहिए था। सिनेमाघर चलाने वाले माने नहीं और निर्माताओं को लगा उनके साथ ज़्यादती हो रही है तो फ़िल्म निर्माताओं की सबसे इलीट संस्था, फ़िल्म एंड टेलीविज़न प्रोड्यूसर्स गिल्ड, भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग (कंपटीशन कमीशन ऑफ इंडिया) के पास पहुँच गई। बीते साल इसी महीने के आदेश में दर्ज जानकारी के मुताबिक, भारत में सिनेमाघरों का डिजिटलीकरण 2014 तक काफी हद तक पूरा हो चुका था। और, हॉलीवुड स्टूडियोज़ के साथ भारत में वीपीएफ़ व्यवस्था भी करीब 2018 के आसपास समाप्त हो गई।लेकिन, भारतीय निर्माताओं से वीपीएफ़ वसूली जारी रही। यहीं से निर्माताओं ने सवाल करने शुरू किए कि जब डिजिटल प्रोजेक्टर लगाने का मूल खर्च कई साल पहले पूरा हो चुका है, तो निर्माता आज भी उसकी कीमत क्यों चुकाए? ये कुछ कुछ वैसा ही जैसे देश में कई स्थानो पर पुल या सड़क बनाने का टोल, उसकी क़ीमत वसूले जाने के बाद भी जारी रहा है। छोटे तथा मीडियम बजट की फ़िल्मों के लिए वीपीएफ़ की रक़म किसी बोझ जैसी हो जाती रही है। मान लीजिए किसी छोटे निर्माता की फ़िल्म सौ-पांच सौ स्क्रीन पर रिलीज़ हो रही है। हर स्क्रीन के लिए वीपीएफ़ के रूप में लगने वाली रकम अलग-अलग



मामलों में बहुत बड़ी नज़र नहीं आती। लेकिन जब सैकड़ों स्क्रीन का हिसाब एक साथ लगाया जाता है तो.. उड़ि बाबा..!फ़िल्म निर्माताओं के संगठन ने भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग के सामने शिकायत की कि वीपीएफ़ की व्यवस्था केवल महंगी नहीं है, बल्कि इसमें भेदभाव की गुंजाइश भी है। आयोग ने 30 सितंबर 2025 को अपने आदेश में कहा कि पीवीआर आईनॉक्स के खिलाफ प्रथम दृष्टया जांच का मामला बनता है।आयोग की चिंता में यह सवाल प्रमुख था कि क्या बड़े निर्माताओं और छोटे निर्माताओं के साथ वीपीएफ़ को लेकर अलग-अलग व्यवहार किया जा रहा था? इसके अलावा यह भी देखा गया कि क्या ऐसी व्यवस्था छोटे निर्माताओं के लिए अपनी फ़िल्म को सिनेमाघरों तक पहुंचाने में बाधा बन सकती है? और सबसे बड़ा सवाल यह था कि जब डिजिटल सिनेमा की मूल लागत का बड़ा हिस्सा वर्षों पहले लगाया जा चुका है, तो आज भी वीपीएफ़ किस आधार पर लिया जा रहा है?यहीं से इस कहानी में नया मोड़ आता है। लंबी कानूनी लड़ाई लड़ने के बजाय पीवीआर आईनॉक्स ने प्रतिस्पर्धा आयोग के सामने प्रतिबद्धता यानी कमिटमेंट के रास्ते से इस विवाद को खत्म करने



का प्रस्ताव रखा है। यानी आयोग की मंजूरी मिलने के बाद पीवीआर आईनॉक्स वीपीएफ़ लेना बंद कर देगा। इसके साथ ही फ़िल्मों की रिलीज़ के लिए पहले से लिया जाने वाला किसी भी तरह का अग्रिम भुगतान भी बंद करने का प्रस्ताव है।लेकिन यहां एक बारीक बात समझना बेहद जरूरी है। पीवीआर आईनॉक्स फ़िल्म दिखाने की लागत लेना ही बंद नहीं करने जा रहा। वीपीएफ़ खत्म होगा, लेकिन उसके स्थान पर प्रदर्शन की लागत वसूलने के लिए नई व्यवस्था प्रस्तावित की गई है। अब निर्माता के सामने दो रास्ते होंगे। पहले रास्ते में प्रदर्शन सेवा शुल्क यानी एग्ज़िबिशन सर्विस चार्ज होगा। इसकी दर साधारण स्क्रीन के लिए शुल्क 450 रुपये प्रति शो और प्रीमियम स्क्रीन के लिए 600 रुपये प्रति शो प्रस्तावित है।किसी स्क्रीन पर फ़िल्म के कुल 60 शो पूरे होने के बाद शुल्क घटाकर 250 रुपये और 350 रुपये प्रति शो क्रमश: करने का भी प्रस्ताव है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि निर्माता को यह पैसा फ़िल्म रिलीज़ से पहले नहीं देना होगा। यह रकम हर सप्ताह होने वाली बॉक्स ऑफिस कमाई में निर्माता या वितरक के हिस्से से काटी जाएगी।इस मॉडल में निर्माता या वितरक कोई निश्चित शुल्क देने के बजाय राजस्व हिस्सेदारी की व्यवस्था चुन सकता है। पीवीआर आईनॉक्स के प्रस्ताव के अनुसार इस स्थिति में निर्माता या वितरक के मौजूदा बॉक्स ऑफिस हिस्से में अधिकतम 7.5 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है। मसलन, अगर किसी फ़िल्म में निर्माता या वितरक का हिस्सा 50 प्रतिशत है तो 7.5 प्रतिशत की कमी के बाद उसका हिस्सा 42.5 प्रतिशत रह जाएगा।प्रतिस्पर्धा आयोग ने इस प्रस्ताव को सार्वजनिक करते हुए फ़िल्म उद्योग और आम लोगों से टिप्पणियां, आपत्तियां और सुझाव मांगे हैं। और, इसके लिए अंतिम तारीख 1 अक्टूबर 2026 तय की गई है।

युवाओं में बढ़ रही ब्रेन फॉग और याददाश्त की समस्या

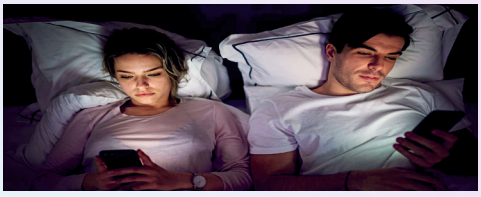
आज के दौर में स्मार्टफोन हमारी जिंदगी का अहम हिस्सा बन चुका है। पढ़ाई, नौकरी, मनोरंजन और सोशल मीडिया से लेकर रोजमर्रा के कई काम अब मोबाइल के जरिए ही होते हैं। हालांकि, विशेषज्ञों का कहना है कि जरूरत से ज्यादा और लगातार स्मार्टफोन का इस्तेमाल युवाओं और किशोरों के मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य पर गंभीर असर डाल रहा है। यही कारण है कि न्यूरोलॉजिस्ट के पास अब बड़ी संख्या में ऐसे युवा पहुंच रहे हैं, जिन्हें लंबे समय तक स्क्रीन देखने से जुड़ी समस्याएं हो रही हैं।

युवाओं में बढ़ रहे हैं ये लक्षण

विशेषज्ञों का यह कहना है कि अत्यधिक स्मार्टफोन इस्तेमाल के कारण युवाओं में बार-बार सिरदर्द, ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई, नींद की कमी, चक्कर आना, दिमाग में धुंधलापन (ब्रेन फॉग) महसूस होना और छोटी-छोटी बातें भूलने जैसी समस्याएं तेजी से बढ़ रही हैं।

क्यों पड़ता है दिमाग पर असर?

विशेषज्ञों का यह भी कहना है कि लगातार नोटिफिकेशन आना, सोशल मीडिया पर बिना रुके स्क्रॉल करना और एक ऐप से दूसरे ऐप पर बार-बार जाना मस्तिष्क को हर समय सक्रिय बनाए रखता है। धीरे-धीरे दिमाग को लगातार नई जानकारी और उत्तेजना की आदत पड़ जाती है, जिससे किसी एक काम पर लंबे समय तक ध्यान केंद्रित करना मुश्किल हो जाता है। यही वजह है कि कई लोग पढ़ाई, मीटिंग या किताब पढ़ते समय भी बार-बार मोबाइल देखने लगते हैं।



नींद और याददाश्त पर भी पड़ता है असर

डॉक्टरों के मुताबिक, देर रात तक मोबाइल इस्तेमाल करने से स्क्रीन से निकलने वाली ब्लू लाइट शरीर में मेलाटोनिन हार्मोन के उत्पादन को प्रभावित करती है। यह हार्मोन हमारी नींद और जागने के चक्र को नियंत्रित करता है। पर्याप्त नींद न मिलने से याददाश्त, एकाग्रता और मानसिक क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके साथ ही चिंता, तनाव, अवसाद और लंबे समय तक रहने वाले सिरदर्द की समस्या भी बढ़ सकती है।

'टेक्स्ट नेक' और डिजिटल थकान का खतरा

लंबे समय तक गर्दन झुकाकर मोबाइल देखने से गर्दन और कंधों की मांसपेशियों पर अतिरिक्त दबाव पड़ता है। इस स्थिति को 'टेक्स्ट नेक' कहा जाता है, जिससे टेंशन हेडेक और माइग्रेन जैसी समस्याएं हो सकती हैं। लगातार स्क्रीन देखने से डिजिटल थकान भी बढ़ती है, जिसके कारण व्यक्ति मानसिक रूप से थका हुआ, चिड़चिड़ा और काम में रुचि न लेने वाला महसूस कर सकता है।

बच्चों और किशोरों पर अधिक असर

विशेषज्ञों का मानना है कि बच्चों और किशोरों पर अत्यधिक स्क्रीन टाइम का प्रभाव अधिक गंभीर हो सकता है, क्योंकि उनका मस्तिष्क अभी पूरी तरह विकसित नहीं होता। ज्यादा स्क्रीन टाइम उनकी पढ़ाई, नींद, शारीरिक गतिविधियों और सामाजिक व्यवहार को प्रभावित कर सकता है।

RNI No.-BIHHIN/2003/12538 Postal Reg:R-10/NP-39/Patna GPO/26-28

दुर्गा पूजा:
आस्था, शक्ति और संस्कृति का उत्सव

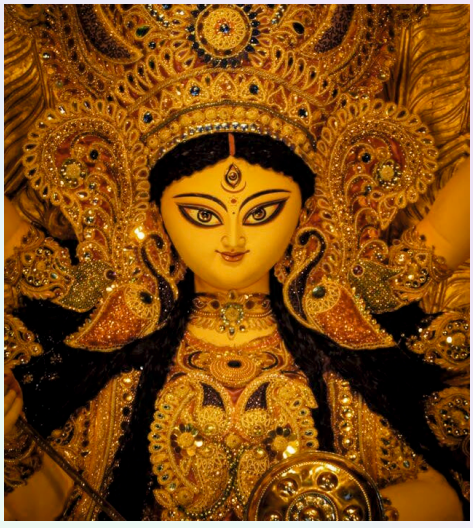
शरद ऋतु की दस्तक के साथ ही वातावरण में एक अलग तरह की उमंग घुलने लगती है। हवा में हल्की ठंडक, आकाश में बिखरे सफेद बादल और चारों ओर खिले काश के फूल मानो मां दुर्गा के आगमन का संदेश देते हैं। दुर्गा पूजा केवल एक धार्मिक पर्व नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति, आस्था, कला और सामाजिक एकजुटता का जीवंत उत्सव है।

दुर्गा पूजा का मूल संदेश अधर्म पर धर्म और असत्य पर सत्य की विजय से जुड़ा है। पौराणिक मान्यता के अनुसार, महिषासुर के अत्याचार से देवताओं और मनुष्यों को मुक्ति दिलाने के लिए देवी दुर्गा का प्राकट्य हुआ। दस दिनों तक चले युद्ध के बाद मां ने महिषासुर का वध किया। इसलिए देवी दुर्गा को शक्ति, साहस और न्याय का प्रतीक माना जाता है।

दुर्गा पूजा के दिनों में पंडालों की भव्यता देखते ही बनती है। मिट्टी से बनी मां की प्रतिमा को कलाकार अपनी कल्पना और मेहनत से जीवंत रूप देते हैं। कहीं पारंपरिक शैली दिखाई देती है तो कहीं आधुनिक कला और पर्यावरण संरक्षण का संदेश। रोशनी, सजावट और सांस्कृतिक कार्यक्रम इस पर्व को और आकर्षक बना देते हैं।

दुर्गा पूजा की सबसे बड़ी विशेषताओं में से एक है इसका सामाजिक स्वरूप। पूजा समितियों के माध्यम से अलग-अलग वर्ग और समुदाय के लोग एक साथ आते हैं। बच्चे, युवा, बुजुर्ग—सभी इस उत्सव का हिस्सा बनते हैं। कई स्थानों पर रक्तदान शिविर, स्वास्थ्य जांच, गरीबों के बीच भोजन और अन्य सामाजिक सेवा कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते हैं। इस तरह पूजा आस्था के साथ सामाजिक जिम्मेदारी का संदेश भी देती है।

बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखंड, असम और ओडिशा सहित देश के अनेक हिस्सों में दुर्गा



पूजा अलग-अलग परंपराओं और रंगों के साथ मनाई जाती है। बंगाल में यह पर्व सांस्कृतिक पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा है, वहीं बिहार में भी पूजा के दौरान भक्ति, मेले, सांस्कृतिक कार्यक्रम और पारिवारिक मिलन का विशेष उत्साह देखने को मिलता है।

आज के बदलते दौर में दुर्गा पूजा हमें अपनी जड़ों से जोड़ने के साथ-साथ यह संदेश भी देती है कि शक्ति का अर्थ केवल सामर्थ्य नहीं, बल्कि सही के लिए खड़े होने का साहस है। मां दुर्गा की दस भुजाएं हमें जीवन की विभिन्न चुनौतियों से संघर्ष करने और संतुलन बनाए रखने की प्रेरणा देती हैं।

दुर्गा पूजा अंततः उस विश्वास का उत्सव है कि चाहे परिस्थितियां कितनी भी कठिन क्यों न हों, सत्य, साहस और सद्भाव की शक्ति से अंधकार को प्रकाश में बदला जा सकता है। यही मां दुर्गा के पर्व का शाश्वत संदेश है—शक्ति की आराधना, संस्कृति का सम्मान और मानवता की सेवा।

डाक टिकट

पता